विक्रम संवत-२०३५, श्रावण शुक्ल - १४, सोमवार, तारीख २५-८-१९८०
वचनामृत- ३०६, ३१०, ३२१ प्रवचन-१८

रुचि का पोषण और तत्त्व का मंथन चैतन्य के साथ एकाकार हो जाए तो कार्य होता ही है। अनादि के अभ्यास से विभाव में ही प्रेम लगा है, उसे छोड़। जिसे आत्मा रुचता है, उसे दूसरा नहीं रुचता और उससे आत्मा गुप्त-अप्राप्य नहीं रहता। जागता जीव विद्यमान है, वह कहाँ जाएगा? अवश्य प्राप्त होगा ही॥३०६॥

वचनामृत। ३०६। आज इसमें चिट्ठी पड़ी थी। **रुचि का पोषण और तत्त्व का मंथन चैतन्य के साथ एकाकार हो जाए तो कार्य होता ही है।** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन, उसकी जिसको रुचि है, 'रुचि अनुयायी वीर्य', उसकी रुचि है तो उस ओर वीर्य झुके बिना रहता नहीं। जिसकी जरूरत अन्दर लगे, उस ओर दृष्टि का विषय हुए बिना रहता नहीं। अनादि काल से ऐसा है। उसमें भी अभी वर्तमान में तो काल महा दुर्लभ हो गया है। सत्य बात बाहर आने पर भी मुश्किल हो गयी। आहाहा!

यहाँ तो रुचि का पोषण। अपना आत्मस्वरूप ज्ञान, आनन्द, शान्ति, स्वच्छता, प्रभुता ऐसी शक्ति से भरा पड़ा (है)। उसकी रुचि, उसका पोषण यदि हो, उसकी रुचि का पोषण। बारम्बार रुचि का उस ओर झुकाव हो। और **मंथन चैतन्य के साथ एकाकार हो...** वैसे तो मंथन में तो विकल्प है, प्रभु! परन्तु उस विकल्प को छोड़कर अन्तर में जाने का प्रयत्न कर। मंथन में से अन्तर में जा। मंथन है तो विकल्प, राग। **मंथन चैतन्य के साथ एकाकार हो जाए तो कार्य होता ही है।**

अनादि के अभ्यास से विभाव में ही प्रेम लगा है,... आहाहा! प्रभु एक ओर पड़ा रहा और बाह्य पदार्थ में प्रेम (लग गया)। छोटी-बड़ी, सूक्ष्म, स्थूल अनेक प्रकार के बाह्य प्रकार में रुचि लग गयी है। उस ओर का झुकाव हो गया है। अन्तर्मुख झुकाव नहीं किया।

अनादि के अभ्यास से विभाव में ही प्रेम लगा है,... विभाव अर्थात् सूक्ष्म राग अन्दर होता है, चैतन्य के विचार में भी जो राग होता है, शुद्ध भगवान आत्मा के विचार का भी राग हो, उस राग को भी छोड़कर अन्तर में रुचि जाए। कलश टीका में लिखा है, कलश टीका है। उसमें लिखा है कि आत्मा का विचार, मंथन सब विकल्प है। राजमलजी की कलश टीका है। आहाहा! वह तो ज्ञायक चैतन्यमूर्ति जिसको कोई अपेक्षा ही नहीं, ऐसी निरपेक्ष चीज़ अन्तर में दृष्टि करने से... महान पुरुषार्थ, महान पुरुषार्थ। अन्तर में महान वीर्य अन्तर में झुकने से आत्मा की प्राप्ति होती ही है। आहा..!

जिसे आत्मा रुचता है, उसे दूसरा नहीं रुचता... जिसको आत्मा रुचता है, उसको दूसरी कोई चीज़ रुचती नहीं। आये, विकल्प आये। आहाहा! परन्तु उसे रुचे नहीं। **और उससे आत्मा गुप्त-अप्राप्य नहीं रहता।** जिसे अपना आनन्दस्वरूप, उसके प्रमाण में रुचि का वीर्य अन्तर में झुकाया है तो उसे प्राप्त हुए बिना नहीं रहता। प्रभु प्राप्त हुए बिना रहे नहीं। आहाहा! जितने प्रमाण में अन्दर पहुँचने का वीर्य चाहिए, उतना वीर्य करे और प्राप्त न हो, ऐसा नहीं बनता। आहाहा! अन्दर से भेदज्ञान हो जाएगा। राग और भगवान दोनों भिन्न पड़ जाते हैं। दोनों भिन्न-भिन्न चीज़ है। चाहे तो व्यवहार में ... शुभराग का अनेक प्रकार का सदाचरण करने में आता है। ... सदाचरण है नहीं। शुभराग सदाचरण नहीं है। आहाहा! सदाचरण तो सत् निर्विकल्प चैतन्यप्रभु ऐसा सत्, उसमें आचरण करना, वह सदाचरण है। दुनिया से अलग चीज़ है, भैया! आहाहा! दुनिया सदाचरण (उसे कहती है), बाहर से ब्रह्मचर्य पाले, स्त्री से विवाह न करे, पैसा की ममता घटाकर पैसे की मर्यादा रखे। वह कोई चीज़ नहीं। आहाहा!

अन्तर भगवान पूर्णानन्द का नाथ विराजता है, उसकी जितनी रुचि, वीर्य चाहिए, उतना वीर्य चले और प्राप्त न हो, ऐसा नहीं बनता। **आत्मा गुप्त-अप्राप्य नहीं रहता।** आहाहा! जितने प्रमाण में आत्मा के प्रति रुचि और दृष्टि चाहिए, उतनी दृष्टि और रुचि हो तो आत्मा अप्राप्य रहता नहीं। आहाहा! आत्मा अप्राप्य रहता है तो समझना कि उसमें जितना वीर्य चाहिए, उतना पुरुषार्थ नहीं है। पुरुषार्थ कहीं दूसरे में रुक गया है। आहाहा! मात्र बातें हैं, करना क्या?

जागता जीव विद्यमान है,... जागता जीव चैतन्यस्वरूप से जागता जीव विद्यमान

है, त्रिकाल विद्यमान है। आहा..! **वह कहाँ जाएगा ?** जागता जीव... आहाहा! विद्यमान है, वह कहाँ जाएगा ? आहाहा! थोड़े शब्द में बहुत अन्दर भर दिया है। जो वीर्य उपयोग अन्दर में जाने का चाहिए, उतना नहीं हो तो समझना कि कहीं बाहर में उपयोग है। आहाहा! कोई बाह्य में, चाहे किसी भी प्रकार से परन्तु बाह्य में ही उपयोग है। अन्तर में जाने का उपयोग उतना हो तो प्राप्त हुए बिना रहे नहीं। आहाहा! **अवश्य प्राप्त होगा ही। वह कहाँ जाएगा ?** जागती ज्योत अनादि-अनन्त विराजती है, आहाहा! वह प्रभु जाएगा कहाँ ? तेरी रुचि और वीर्य के अभाव के कारण उस ओर तेरा झुकना नहीं हुआ। आहा..! कहीं-कहीं जगत की प्रपंच जाल अनेक प्रकार की, सदाचार के नाम पर भी शुभराग का पोषण करता है, वह भी जहर है। आहाहा! सदाचरण करते हैं। सदाचरण में तो प्रभु सत् पड़ा है न! सत् का आचरण तो त्रिकाली सत् है, उसका आचरण चाहिए। सदाचरण तो उसको कहते हैं। बाकी त्रिकाल सत् है, उससे विरुद्ध भाव है, वह असत् आचरण है। चाहे तो दया, दान, व्रत रागादि की क्रिया के परिणाम हो। आहाहा! है बिल्कुल, कड़क भाषा में कहें तो अधर्म है। आहाहा! दुनिया जिसे सदाचरण मानती है, वह असदाचरण है। सदाचरण अन्दर रहता है, प्रभु! सच्चिदानन्द प्रभु सदा जागती ज्योत चैतन्यबिम्ब ज्ञान के प्रकाश का पिण्ड, सूर्य चैतन्यसूर्य जागती ज्योत अनादि-अनन्त विद्यमान है। उस ओर की जितने प्रमाण में रुचि और वीर्य चाहिए, उतना वीर्य रुचि हो और प्राप्त न हो, ऐसा नहीं बनता। आहाहा! यह मूल की बात है, प्रभु! इसके बिना सब बिना अंक के शून्य हैं।

अन्तर भेदज्ञान... आहाहा! सूक्ष्म विकल्प से भी भेदज्ञान, उसके बिना आत्मा का पता मिले नहीं और दूसरी कोई क्रियाकाण्ड से जन्म-मरण का अन्त आता नहीं। आहाहा! **अवश्य प्राप्त होगा ही।** ३०६। आज किसी ने रखा था। अपने यहाँ ३१०।

चैतन्यलोक अद्भुत है। उसमें ऋद्धि की न्यूनता नहीं है। रमणीयता से भरे हुए इस चैतन्यलोक में से बाहर आना नहीं सुहाता। ज्ञान की ऐसी शक्ति है कि जीव एक ही समय में इस निज ऋद्धि को तथा अन्य सबको जान ले। वह अपने क्षेत्र में निवास करता हुआ जानता है; श्रम पड़े बिना, खेद हुए बिना जानता है। अन्तर में रहकर सब जान लेता है, बाहर झाँकने नहीं जाना पड़ता ॥३१०॥

३१०। **चैतन्यलोक अद्‌भुत है।** प्रभु! तेरा चैतन्यलोक अन्दर अद्‌भुत है। उसकी अद्‌भुतता के समक्ष इन्द्र का इन्द्रासन सड़े हुए तिनके जैसा है। ऐसा अन्दर में महा वैभव पड़ा है। **चैतन्यलोक अद्‌भुत है।** आहाहा! **उसमें ऋद्धि की न्यूनता नहीं है।** कोई भी अन्तर शक्ति अनन्त है, अनन्त-अनन्त शक्ति संख्या से। संख्या से अनन्त-अनन्त गुण हैं। कोई गुण में क्षति नहीं है, न्यूनता नहीं है। आहाहा! ऋद्धि की न्यूनता बिल्कुल नहीं है। आहाहा! **रमणीयता से भरे हुए...** भगवान तो रमणीयता से भरा है। अन्दर रमना, आनन्द में रमना, ऐसा भरा है। रमणीयता बाह्य में कहीं नहीं है। इन्द्र के इन्द्रासन में भी जहर है। आहाहा! विषय की वासना इन्द्राणी, इन्द्र को... समकिती हो, अभी इन्द्र समकिती है। फिर भी जितना पर-ओर राग आता है, उतना राग दुःख और जहर है। यहाँ तो पहले से लेना है, वहाँ तो आत्मा के प्रमाण में पुरुषार्थ चाहिए। जितने प्रमाण में पुरुषार्थ चाहिए, उतने प्रमाण में पुरुषार्थ हो तो आत्मा प्राप्त होता है। आहाहा!

रमणीयता से भरे हुए इस चैतन्यलोक में से बाहर आना नहीं सुहाता। जिसको भेदज्ञान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, आत्मा की सम्पदा सम्यग्दर्शन में प्राप्त हुई। आहाहा! जिसको **रमणीयता से भरे हुए इस चैतन्यलोक में से बाहर आना नहीं सुहाता।** अन्दर रह सकते नहीं, विकल्प में बाहर आना ही पड़े परन्तु वह दुःख है। आहा..! चाहे तो शुभराग हो। प्रभु का वचन तो ऐसा है, त्रिलोकनाथ वीतराग का वचन... पुरुषार्थसिद्धि उपाय शास्त्र है, अमृतचन्द्राचार्य ने बनाया है, समयसार की टीका की, उन्होंने पुरुषार्थसिद्धि उपाय बनाया है। वहाँ तो ऐसा कहते हैं, प्रभु! पर की दया तो पाल सकता नहीं, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को छूता नहीं तो तू कैसे पर की दया पाल सकते हो? आहाहा! वह तो ठीक, परन्तु दया पालने का भाव आया, वह कर सकता तो नहीं; भाव आया, वह आत्मा की हिंसा है। अरेरे..! गजब बात! पुरुषार्थसिद्धि उपाय, अमृतचन्द्राचार्य। श्लोक मूल पाठ (है)।

पर की दया, वह हिंसा है। अरर..र..! क्योंकि वहाँ विकल्प-राग उठता है। आहाहा! एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ कर सकता तो नहीं। छूता नहीं, स्पर्शता नहीं, प्रवेशता नहीं। वह बात तो दूर रही। परन्तु उस द्रव्य की दया का भाव आया... आहाहा! पुरुषार्थसिद्धि उपाय, अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, प्रभु! वह राग तेरी हिंसा है। अरेरे! गजब! यहाँ तो लौकिक काम करे। .... कार्यवाहक के रूप से, अग्रणी बनकर काम लेना, वह

बड़प्पन में गिनने में आता है। यहाँ परमात्मा कहते हैं, पर की दया पाल सकते नहीं। फिर भी पर की दया का भाव आना, वह तेरे स्वरूप की हिंसा है, प्रभु! पुरुषार्थसिद्धि उपाय में दिगम्बर सन्त जगत की दरकार छोड़कर, समाज सन्तुलित रहेगा या नहीं, एकजुट रहेगा या नहीं; दो भाग हो जाएँगे, दरकार नहीं है उनको। मार्ग यह है। सत् को संख्या की जरूरत नहीं। क्या कहा?

दो, पाँच, पच्चीस हजार, लाख-दो लाख माने तो वह सत्। ऐसी कोई सत् को संख्या की जरूरत नहीं है। आहाहा! एक ही निकले सत् को माननेवाला तो भी सत् तो सत् ही है। आहाहा! असत्य को तो माननेवाली पूरी दुनिया है, परन्तु सत् को माननेवाले की संख्या ज्यादा हो तो वह सत् को माननेवाले की प्रसिद्धि होगी, ऐसा है नहीं। आहाहा! सत् को संख्या की जरूरत नहीं है, सत् को सत् के स्वभाव की जरूरत है। आहाहा! भगवान आत्मा, जैसा-जैसा जितना जैसा है, उतना दृष्टि में लेकर भेदज्ञान करना, उसको- सत् को संख्या की जरूरत नहीं कि बहुत लोग माने तो ठीक कहलाये। आहाहा! कड़क लगे, क्या करें?

गाँधीजी प्रवचन में आये थे, राजकोट में। समयसार चलता था। वहाँ तो ऐसे चले कि पर की दया करना, वह भाव भी हिंसा है। आहाहा! वह सदाचरण नहीं। और उसका... आहाहा! पर की मैं दया पालता हूँ, सत्य बोलता हूँ, अहिंसा करता हूँ, चोरी नहीं करता हूँ, ब्रह्मचर्य पालता हूँ, परिग्रह मैंने छोड़ दिया है, ऐसे भाव को भी भगवान हिंसा कहते हैं। क्योंकि वह विकल्प उठा है। आहाहा! सुनना कठिन लगे। सत्य वस्तु भगवान कोई अलौकिक बात है। आहाहा!

यहाँ कहा, **चैतन्यलोक में से बाहर आना नहीं सुहाता।** जिसको चैतन्यलोक की रुचि हो गयी अन्दर, भेदज्ञान हुआ तो राग चाहे तो शुभ हो या अशुभ, दोनों जहर है और भगवान अमृतस्वरूप है—ऐसा दोनों के बीच का भेदज्ञान हो गया। आहाहा! इस लोक में से बाहर आना नहीं चाहता। **ज्ञान की ऐसी शक्ति है...** ज्ञान अर्थात् आत्मा। भगवान आत्मा का ऐसा सामर्थ्य है कि **जीव एक ही समय में...** एक ही समय में **इस निज ऋद्धि को...** आहाहा! अपनी अनन्त ऋद्धि, प्रभु! एक समय में पा सकता है, ऐसी उसमें ताकत है। आहाहा! अपनी अनन्त अपूर्व ऋद्धि अनन्त काल में अपूर्व अर्थात् पूर्व में कभी पायी नहीं।

वह ऋद्धि भी विद्यमान सत् तैयार है। एक समय में पूर्ण ऋद्धि प्राप्त कर सके, ऐसी ताकत है। आहाहा! अरे..रे..! वह आत्मा का कैसे बैठे? शरीर के सामर्थ्य का बैठे। आहा..!

एक बार तो ऐसा हुआ कि सब योद्धा इकट्ठे हुए। सभा (भरी)। नेमिनाथ भगवान भी साथ में बैठे थे। संसार (गृहस्थ) में थे। भीम, अर्जुन आदि सब योद्धा साथ में थे। सब प्रशंसा करने लगे। किसी ने कहा, भीम (बड़ा) योद्धा। शरीर का सामर्थ्य, हों! आत्मा का नहीं। किसी ने कहा, उसका बल ज्यादा है, कोई भीम का कहे, कोई अर्जुन का कहे, फलाना का कहे। एक ने सभा में ऐसा कहा, नेमिनाथ भगवान विराजते हैं। गृहस्थाश्रम में थे। उसके शरीर के सामर्थ्य के आगे किसी का सामर्थ्य नहीं है। शरीर का सामर्थ्य। आहाहा! ऐसा हुआ कि भगवान भी बैठे थे। गृहस्थाश्रम में थे। राग-विकल्प आता था। ऐसी बात हुई तो दोनों पैर नीचे रखे। कोई इस पैर को उठाओ। कोई बलवान योद्धा इस पैर को ऊपर करो। श्री कृष्ण आये। पाठ ऐसा है। श्रीकृष्ण पैर को ऊँचा करते हैं। शरीर का इतना सामर्थ्य। तीर्थंकर के शरीर का। आहाहा! श्रीकृष्ण जैसे लौट गये। वज्रबिम्ब खिसके तो पैर खिसके। ऐसा तो शरीर का बल था, जड़ का। ऐसा विकल्प आ गया। भगवान को भी ऐसा विकल्प आ गया। यह लोग बातें करते हैं, चलो, भले देख ले। आहाहा! वह भी दुःखरूप तो लगता था, विकल्प। कमजोरी के कारण से वह विकल्प आया। श्रीकृष्ण ने पैर उठाने की बहुत मेहनत की। एक तसू (-एक इंच जितना नाप) खिसका नहीं। परन्तु वह तो शरीर के बल की बात है। वह कोई आत्मा के बल की बात नहीं है। आत्मा एक परमाणु को भी पलट सकता नहीं। आत्मा, आँख की पलक झपकती है, वह आत्मा से नहीं। आहाहा! थोड़ी पलक झपकती है, वह आत्मा से नहीं। तीन काल में आत्मा से नहीं। आत्मा उसको छूता नहीं, आत्मा में उसका अत्यन्त अभाव है, और पलक में आत्मा का अत्यन्त अभाव है। अभाव है, उसमें छुए कहाँ से? पलक झपकाये कैसे? अंगुली हिलाना... आहाहा! आत्मा की ताकत नहीं। अंगुली ऐसे हिलाये, वह आत्मा की ताकत नहीं। वह आत्मा से हिलती नहीं। यह अंगुली अपने परमाणु के सामर्थ्य से हिलती है। आहाहा! वह माननेवाला निकले, जड़ की शक्ति। परन्तु चैतन्य के बल का पार नहीं, प्रभु! वह तो जड़ है, यह तो प्रभु आत्मा है। अनन्त-अनन्त चैतन्यऋद्धि भरी है। एक ऋद्धि की भी अमोल कीमत है। आहाहा! जिसका मूल्य नहीं, ऐसा भगवान आत्मा...

यहाँ कहते हैं, **ऐसी शक्ति है कि जीव एक ही समय में इस निज ऋद्धि को तथा अन्य सबको जान ले।** करे किसी का नहीं। करना किसी भी चीज़ का पर का - एक परमाणु का नहीं और जानने में कोई चीज़ बाकी नहीं। आहाहा! प्रभु! ऐसा मार्ग है। ऐसा मार्ग गुप्त हो गया है। अभी तो धमाधम बाहर की धमाधम में लोग मान बैठते हैं, प्रभु! जीवन चला जाता है। आयुष्य पूरा हो जाएगा। कहाँ जाएगा प्रभु? तेरी सत्ता तो अनादि-अनन्त है। उसकी सत्ता भविष्य में अनन्त काल रहनेवाली है। तेरी सत्ता तो अनन्त काल रहनेवाली है। प्रभु! कहाँ रहेगा? तेरे में जो रुचि, दृष्टि और भेदज्ञान नहीं किया (तो) कहाँ रहेगा? प्रभु! आहाहा! यहाँ तो एक समय में अनन्त ऋद्धि और तीन काल जानने की उसमें शक्ति है। उस शक्ति का भरोसा, विश्वास आता नहीं। आहाहा! भाई नहीं आये हैं न? बाबूभाई।

वह अपने क्षेत्र में निवास करता हुआ... क्या कहते हैं? पर की ऋद्धि अपने क्षेत्र में रहकर जानता है। अपनी ऋद्धि अपने में रहकर जानता है और अपने सिवा सब लोकालोक, त्रिलोकनाथ केवली का केवलज्ञान ऋद्धि भी यह आत्मा जानता है, अपने क्षेत्र में रहकर जानता है। अपने क्षेत्र में रहकर जानता है। अपने क्षेत्र को छोड़कर जानता है, ऐसा नहीं। आहा..! ऐसी बात कठिन लगे, भाई!

बहिन की वाणी तो निकल गयी है। आहा..! बहिन तो कल नहीं आये थे। बरसात आयी थी। ... आते हैं न, नहीं आये थे। उनकी स्थिति तो अलौकिक है। परसों है न? जन्मदिन। ६८। स्त्री का देह आ गया है। उनकी जो शक्ति है, उसका नाप करने का साधारण का काम नहीं। ऐसी शक्ति है अन्दर। अनुभव-अनुभूति सम्यग्दर्शन। असंख्य अरब वर्षों का जातिस्मरण। असंख्य अरब में देव आया, इसलिए देव का आयुष्य तो बड़ा आयुष्य है न। स्वर्ग का। पहले स्वर्ग का दो सागर का आयुष्य है। एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम, एक पल्योपम के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष। क्या कहा? एक भव सौधर्म (देवलोक का) हो और जानने में आया। वहाँ दो सागर की स्थिति है। एक सागर में दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम होता है। दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम। एक पल्य के असंख्यवें भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। आहाहा! ऐसा नौ भव का ज्ञान (है)। कुछ नहीं। मुर्दे की भाँति खड़े रहते हैं। वस्तु तो वस्तु है। लोग स्वीकारे, न स्वीकारे, उसके साथ

कोई सम्बन्ध नहीं है। सत् को संख्या की जरूरत नहीं है। यह माने और माननेवाले मिले तो मेरा सत् और मेरा माननेवाला नहीं मिले तो मेरा असत् हो जाए। सत् तीन काल में असत् होता नहीं और तीन काल में सत् प्राप्त हुआ, वह असत् हो जाता नहीं। दुनिया निन्दा करे, विरोध करे, निश्चयाभासी कहे, चाहे जैसी भाषा कहे, वस्तु में अंश... नहीं। आहा..! ऐसी आत्मा में ताकत है। आहा..!

ज्ञान की ऐसी शक्ति है कि जीव एक ही समय में इस निज ऋद्धि को तथा अन्य सबको... अपने क्षेत्र में रहकर जानता है। **वह अपने क्षेत्र में निवास करता हुआ जानता है;...** आहाहा! एक आदमी घर में खड़ा हो। (बाहर) ताबूच या लाखों आदमी निकले हो। घर में खड़े रहकर जैसे देखे, ऐसे आत्मा में खड़े-खड़े पूरी दुनिया जाने। तीन काल-तीन लोक को आत्मा जाने। आहाहा! घर में खड़े रहकर जाने। ऐसे प्रभु की तुझे... आहाहा! उस ओर की रुचि, उस ओर की वृत्ति, उस ओर की सन्मुखता, उस ओर का झुकाव... आहाहा! उसके बिना तो सब निरर्थक है। पूरी जिन्दगी निरर्थक चली जाएगी।

यहाँ कहते हैं, **अपने क्षेत्र में निवास करता हुआ जानता है;...** पर को जानने के लिये पर क्षेत्र में जाना पड़ता नहीं। अलोक। अलोक को जाने कि अलोक कितना है? चौदह ब्रह्माण्ड-यह चौदह राजूलोक। अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... किसी भी दिशा में चले जाओ, इस ओर आकाश है, (उस दिशा में) ऐसे ही चला जाए, कोई पता नहीं, उस ओर चला जाए, तो वहाँ भी पता नहीं। आहाहा! ऐसी आकाश की श्रेणी इतने में असंख्य है। एक-एक श्रेणी लोक में चले जाए तो लोक तो पूरा हो गया। बाहर भी श्रेणी गई तो अन्त में क्या? उसका अन्त कहाँ? आहाहा! क्षेत्र का भी ऐसा स्वभाव। तो क्षेत्रज्ञ-क्षेत्र को जाननेवाला भगवान। आहाहा! उसकी शक्ति क्या कहनी! क्षेत्र का ऐसा स्वभाव, थोड़ा विचार करे तो खबर पड़े। श्रेणी, शास्त्र में लिखा है। लोक और अलोक दो भाग दिखे। एक श्रेणी ऐसे ही चली जाती है, दूसरी, तीसरी चली जाती है। अनन्त श्रेणी, कहीं अन्त नहीं। ऊपर अन्त नहीं, इस ओर अन्त नहीं, उस ओर अन्त नहीं, नीचे अन्त नहीं। आहाहा! ऐसे अलोक को भी अपने क्षेत्र में रहकर, अलोक में गये बिना अपने सामर्थ्य से अपने क्षेत्र में जानता है। आहाहा! विचार कब किया है? ... अन्दर सत् क्या है, ऐसा भगवान आत्मा **अपने क्षेत्र में निवास करता हुआ जानता है;...**

श्रम पड़े बिना,... इतना जानने में श्रम पड़ जाए, थकान लगे, ऐसा है नहीं। आनन्द के सागर में, आनन्द के सागर में आनन्द का अनुभव करते हुए, आनन्द के साथ का ज्ञान लोकालोक को जान लेता है। आहाहा! **श्रम पड़े बिना, खेद हुए बिना जानता है।** इतना जाना तो श्रम पड़े या नहीं? खाताबही लिखता है, एक-दो खाताबही ५००-५०० पन्ने की लिखे तो थक जाए। पढ़ते-पढ़ते थक जाए। दिवाली के दिन बड़ी-बड़ी खाताबही हो, पैसेवाला हो। हमारे मकान के पास ... वडोदरा में, लोटिया वोरा। बड़े गृहस्थ थे। खाताबही लिखने बैठे, तब बड़ी खातबही निकाले। नूतन वर्ष के दिन। पार नहीं, उतना लिखते रहे। मानो ज्यादा लिखे तो ज्यादा पैसे मिलेंगे। आहाहा! खुदा को नमस्कार, खुदा को नमस्कार, खुदा को ऐसा और खुदा को वैसा। दुकान के पास था। .... नरुद्दिन नाम का बड़ा वोरा, वडोदरा का। लोग ऐसा माने कि... यहाँ बनिये भी लिखते हैं न। शालिभद्र की ऋद्धि हो। कहाँ डालेगा तू? क्या है तुझे? आहाहा!

मुमुक्षु :- बाहुबली का बल होओ।

पूज्य गुरुदेवश्री :- बाहुबली का बल होओ। किसके साथ तुझे लड़ना है, प्रभु? क्या करना है? अभयकुमार की बुद्धि हो। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, आत्मा की बुद्धि होओ। जिस बुद्धि में अन्तर में रहकर तीन काल तीन लोक जाने, फिर भी श्रम नहीं, परन्तु आनन्द है। अनन्त-अनन्त आनन्द है। आहाहा! भेदज्ञान में भी आनन्द है तो सर्वज्ञ में तो क्या कहना? आहा..!

अन्तर में रहकर सब जान लेता है,... अन्तर में रहकर सब जान लेता है। करना है कुछ नहीं, कर सके नहीं कुछ, जान सके (सब कुछ), एक भी चीज़ बाकी रखे बिना। आहाहा! **सब जान लेता है,... अन्तर में रहकर सब जान लेता है, बाहर झाँकने नहीं जाना पड़ता।** आहाहा! अलोक को जानना हो तो उपयोग बाहर नहीं रखता। उपयोग बाहर जाए तो बाहर जान सके, ऐसा नहीं। अन्तर में रहा उपयोग पर को जान सकता है। आहाहा! अभी भी ऐसा है। गिरनार आदि पर्वत पर चढ़े। नीचे उतरे तो कितना दिखे। आँख तो इतनी है, परन्तु दिखता है कितना? मालूम है, सब देखा है न। चारों ओर नीचे दिखे, दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह, बीस कोस तक। इतनी छोटी आँख में नीचे उतरते समय (दिखाई दे)। ऊपर चढ़ते समय तो सामने पर्वत देखता है। परन्तु उतरते समय... यह किया है न, सब

देखा है न। उतरते समय देखे तो कहीं की कहीं नजर (पहुँचे)। कहाँ जैतपुर और कहाँ जूनागढ़। वहाँ से दिखे। वहाँ जाना पड़ता है ? आहाहा! अपने में रहकर सबको जानने की इतनी ताकत है। कभी जाँच करे तो मालूम पड़े न। आहाहा! सम्मेदशिखर पर जाए। फिर नीचे नजर करे तो कितनी बात जान सकता है। श्रम बिना। परन्तु रागी प्राणी है। आहाहा!

यहाँ तो राग रहित आत्मा की शक्ति खिली, श्रम पड़े बिना, खेद बिना अपने क्षेत्र में रहकर सब भाव को अपने क्षेत्र में सब भाव को जान लेता है। ऐसी ताकत आत्मा में है। आहाहा!

मुमुक्षु :- यह चैतन्य की ऋद्धि ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- चैतन्य की ऋद्धि। सेठपना नहीं कर सकता। आहाहा! एक पैसा किसी को दे सकता नहीं। किसी से एक पैसा ले सकता नहीं। अरर..! ऐसी चीज़। भगवान! तू तो ज्ञानस्वरूप है न, प्रभु! ज्ञानस्वरूप में क्या है ? प्रभु! ज्ञान जानने का काम करे ? या ज्ञान पर का काम करे ? क्या करता है ? आहाहा! इतने-इतने काम किये, इतने काम हमने किया, हमने व्यवस्था की। इस बड़ी संस्था के हम व्यवस्थापक हैं। .... लेकिन बापू! प्रभु! वह वस्तु व्यवस्था तो समय-समय में होनेवाली होगी ही। वह व्यवस्था होती है और तू व्यवस्था करनेवाला बन जा, कहाँ जाना है तुझे ? आहाहा! जिसको देखने से अभिमान होता है, वहाँ लोक में भटकने जाना है। लोक में भटकने जाना है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, आहाहा! **बाहर झाँकने नहीं जाना पड़ता।** ३१० हुआ ? किसी ने इसमें लिखा है। ३२१।

पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता, द्रव्यदृष्टि करने से ही चैतन्य प्रगट होता है। द्रव्य में अनन्त सामर्थ्य भरा है, उस द्रव्य पर दृष्टि लगाओ। निगोद से लेकर सिद्ध तक की कोई भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है। साधकदशा भी शुद्धदृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है। द्रव्यदृष्टि करने से ही आगे बढ़ा जा सकता है, शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। द्रव्यदृष्टि में मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यसामान्य का ही स्वीकार होता है॥३२१॥

३२१। **पर्याय पर दृष्टि रखने से...** है ? आहाहा! पर-ऊपर दृष्टि रखने से, उसकी तो बात कहाँ करनी ? **पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता,...** आहाहा! भगवान आत्मा... पर-ऊपर लक्ष्य करने से, श्रवण, मनन, संग, सत्संग, उससे कोई आत्मा प्रगट नहीं होता। उससे तो नहीं होता, परन्तु पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता। आहाहा! ऐसी बात है। अपनी पर्याय। दूसरी चीज़ की दृष्टि करने से बहिरात्मा (हो) जाता है। बहिर आत्मा-बाह्य चीज़ मेरी है, मैं पर को जानता हूँ, यह चीज़ मेरी है, यह चीज़ है तो मैं जानता हूँ; मेरे में ताकत है तो मैं जानता हूँ, ऐसा नहीं मानता। वह चीज़ है तो मैं जानता हूँ। जानने की शक्ति .... मेरे में ज्ञान की ताकत है। क्षेत्र बदले बिना (जानता हूँ)। आहाहा! ३२१ है न ? आहा..!

द्रव्य में अनन्त सामर्थ्य भरा है,... द्रव्य में अनन्त सामर्थ्य (भरा है)। द्रव्य अर्थात् पैसा नहीं। द्रव्य अर्थात् वस्तु। उसकी शक्ति-गुण, और उसकी दशा को अवस्था (कहते हैं)। द्रव्य, गुण और पर्याय तीन है। उसकी सत्ता तीन में है, बाहर कहीं नहीं है। बाहर के साथ कहीं कुछ सम्बन्ध नहीं। अपने में द्रव्य, गुण, पर्याय तीन है। द्रव्य अर्थात् त्रिकाली वस्तु, गुण अर्थात् त्रिकाली शक्ति। पर्याय अर्थात् वर्तमान दशा-अवस्था। आहाहा! **पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता,...** आहाहा! सुनने से (नहीं होता)। कठिन बात है, प्रभु! प्रत्यक्ष दिखता हो, वह झूठी कैसे ? क्या दिखता है ? प्रभु! आहाहा!

पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता, द्रव्यदृष्टि करने से ही... त्रिकाली भगवान पूर्णानन्द का नाथ, एकरूप त्रिकाल। पर्याय तो पलटती है। पर्याय तो एक समय में एक और दूसरे समय दूसरी पलटती है। पलटती के पीछे अन्दर भगवान पाताल में विराजता है। पर्याय की अपेक्षा से पाताल अन्दर। **द्रव्यदृष्टि करने से ही चैतन्य प्रगट होता है।** आहाहा! द्रव्यदृष्टि करने से ही। एकान्त हुआ। दूसरा कोई उपाय नहीं, प्रभु! दूसरी कोई रीति नहीं है, तीन काल तीन लोक में। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर, अनन्त तीर्थंकरों, अनन्त सर्वज्ञों, अनन्त सन्तों, यह बात करके गये हैं। आहाहा! **द्रव्यदृष्टि करने से ही चैतन्य प्रगट होता है।** तेरी पर्याय पर दृष्टि करने से पर्यायमूढ़ हो जाता है। आहा..! प्रवचनसार ९३ गाथा। पहली में लिया है, पर्यायमूढा परसमया। अपनी पर्याय में भी दृष्टि रखनेवाला, पर्यायमूढ़ परसमया-वह परात्मा, अनात्मा है। वह आत्मा नहीं। आहाहा!

अरे.. ! दुनिया के पास ऐसी बात ? मार्ग तो ऐसा है। बचाव करने के लिये कुछ भी कहे, दूसरा होता नहीं।

द्रव्य में अनन्त सामर्थ्य भरा है, उस द्रव्य पर दृष्टि लगाओ। आहाहा! भगवान चैतन्यस्वरूप अनन्त गुण का भण्डार, अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. अनन्त.. तीन काल के समय से भी अनन्त.. अनन्त। एक सेकेण्ड में असंख्य समय। ऐसे तीन काल का समय, उससे भी अनन्त गुना तेरे में गुण है। आहाहा! तेरे में उससे भी अनन्तगुनी ऋद्धि है। आहाहा! **उस द्रव्य पर दृष्टि लगाओ। निगोद से लेकर सिद्ध तक की कोई भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है।** क्या कहते हैं ? सम्यग्दर्शन—धर्म की प्रथम शुरुआत, धर्म की पहली सीढ़ी, धर्म का प्रथम सोपान, यह द्रव्यदृष्टि... आहाहा! **निगोद से लेकर सिद्ध तक....** बीच में सब आ गया। पंच परमेष्ठी आदि। **निगोद से लेकर सिद्ध तक की कोई भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है।** आहाहा! सम्यग्दर्शन का, निगोद से लेकर सिद्ध भगवान तक, बीच में पंच परमेष्ठी, अरिहन्त आदि बीच में आ गये। आहाहा! **निगोद से लेकर सिद्ध तक की कोई भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है।** आहाहा! सम्यग्दर्शन का विषय कोई (पर्याय) नहीं है। निगोद से लेकर सिद्ध, सम्यग्दर्शन का विषय-ध्येय नहीं है। आहाहा! अरे..रे.. ! ऐसा सुनना...

यह तो भगवान की वाणी है। अनुभव में से ... भगवान के पास सुना था। जातिस्मरण है। असंख्य अरबों वर्ष का, बहिन को। जगत को बैठना कठिन पड़े। अपनी होशियारी के आगे ... चीज़ क्या है, उसका नाप करना कठिन पड़े।

यहाँ कहते हैं, यह बहिन के शब्द है। **कोई भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है। साधकदशा भी...** आहाहा! अरे.. ! साधकदशा। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, यह मोक्षमार्ग भी **शुद्धदृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है।** आहाहा! कठिन पड़े, पाटनीजी! ऐसी बात है। **साधकदशा भी...** मोक्षमार्ग प्रगट हुआ तो भी **शुद्धदृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है।** आहाहा! वह भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। सम्यग्दर्शन का सम्यग्ज्ञान भी विषय नहीं है। सम्यग्दर्शन का चारित्रदशा वह भी विषय नहीं। वह तो नहीं, अपितु पंच परमेष्ठी और सिद्ध भी उसका विषय नहीं है। आहाहा! अपनी पर्याय भी चार ज्ञान प्रगट हुआ हो, तो भी वह दृष्टि का विषय नहीं है। आहाहा! बड़ी कठिन बात। **कोई**

भी पर्याय, शुद्धदृष्टि का विषय नहीं है। साधकदशा भी शुद्धदृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है। शुद्धदृष्टि का विषय तो त्रिकाल स्वभाव है, साधकदशा तो पर्याय है। पर्याय तो उसमें है नहीं। आहाहा! गजब बात है! ऐसी बात बाहर आये तो सुनने में... पुण्य है तो बाहर यह बात सुनते हैं, नहीं तो मुश्किल हो जाए। आहाहा!

साधकदशा भी... मोक्ष का मार्ग-निश्चयमोक्षमार्ग। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। क्षायिक समकित; क्षायिक समकित भी समकित का विषय नहीं है। आहाहा! ऐसा है, भगवान! तेरी दृष्टि का विषय तो अलौकिक ... है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ, उसमें विपरीतता तो नहीं, अल्पता नहीं और पूर्णता से पूर्ण भरा भगवान (है)। अनन्त गुण,... **साधकदशा भी शुद्धदृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है।** मूल स्वभाव में साधकदशा नहीं है। आहाहा! दृष्टि, दृष्टि के विषयभूत मूल स्वभाव में नहीं है। (मूल स्वभाव है), उसमें दृष्टि नहीं है, ऐसा कहते हैं। साधकदशा का विषय है, परन्तु साधकदशा उसमें नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। सुनने तो मिले।

द्रव्यदृष्टि करने से ही आगे बढ़ा जा सकता है,... सबके ऊपर से दृष्टि उठाकर, पर्याय पर से दृष्टि उठाकर... आहाहा! अपने द्रव्य पर दृष्टि देने से आगे बढ़ सकता है। चारित्र, केवलज्ञान ले सकता है। **शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता।** क्या कहते हैं? शुद्ध पर्याय चार ज्ञान प्रगट हुए, अवधिज्ञान प्रगट हुआ। उससे भी, **शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता।** आगे बढ़ने में तो दृष्टि का विषय है, उसे पकड़ने से आगे बढ़ सकता है। उत्पन्न भी उससे होता है और उसी के आश्रय से आगे बढ़ सकता है। पर्याय जो निर्मल हुई, उसके आश्रय से बढ़ नहीं सकता। आहाहा!

द्रव्यदृष्टि में मात्र शुद्ध अखण्ड द्रव्यसामान्य का ही स्वीकार होता है। आहाहा! (समय हो गया)। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)